

उपनिषदों में वर्णित योग तत्वों की विवेचना

विनोद प्रसाद¹, डॉ. विपिन कुमार भट्ट²

¹शोधार्थी, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, देहरादून

²शोध निर्देशक, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, देहरादून



Received 15 September 2026

Accepted 20 September 2026

Published 25 September 2026

Corresponding Author:

विनोद प्रसाद

DOI: <https://doi.org/10.64880/pcjaict.v1i5.26>

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s).

This is an open access article under the [Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).

OPEN ACCESS

सारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपनिषदों में वर्णित योग तत्वों का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। उपनिषद् भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हैं जहाँ योग का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन प्रमुखता से प्राप्त होता है। कठोपनिषद् (2.3.11) के अनुसार इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग है - स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। जाबाल दर्शनोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् एवं मैत्रायणि उपनिषद् में अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का विस्तृत वर्णन मिलता है। शोध पद्धति के रूप में 12 प्रमुख उपनिषदों की विषय-वस्तु विश्लेषण पद्धति अपनाई गई है। निष्कर्षतः यह ज्ञात होता है कि पातंजल योगसूत्र में जहाँ 5 यम एवं 5 नियमों का वर्णन है, वहीं जाबाल दर्शनोपनिषद् में 10 यम (दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार, शौच सहित) एवं 10 नियम (तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, लज्जा, जप, मति, व्रत, सिद्धान्त श्रवण) का उल्लेख है। इसी प्रकार 9 आसनों (स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त, मयूर, सुख) तथा प्राणायाम को स्वर्ण शोधन की भाँति इन्द्रिय दोष निवारक बताया गया है। अतः उपनिषदीय योग केवल शारीरिक नहीं अपितु नैतिक एवं वेदान्तनिष्ठ है।

मुख्य शब्द:- उपनिषद्, अष्टांग योग, जाबाल दर्शनोपनिषद्, यम-नियम, प्राणायाम, समाधि

प्रस्तावना:-

उपनिषदों में वर्णित योग तत्वों की विवेचना उपनिषदों में योग तत्वों का वर्णन प्रमुखता के साथ पाये जाते हैं। कठोपनिषद् के अनुसार जब इन्द्रियों की स्थिर धारणा की जाती है, तो इसे योग कहा जाता है।¹ गीता के अनुसार कर्मों की कुशलता योग है।² यह कुशलता योग के अभ्यास से प्राप्त होती है। ईशावास्योपनिषद् का ऋषि कहता है कि निरंतर कर्म करते हुए जीना भगवान हमें दे, जीना चाहिए। जब हम कर्म को त्यागते हैं, जीवन भारस्वरूप हो जाता है।³ गीता की भाँति कठोपनिषद् में भी मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा देते हुए कहा है —

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥1/3/14॥

अर्थात् उठ जाओ जाग जाओ, श्रेष्ठ पुरुषों के पास पहुँचकर आत्मज्ञान को प्राप्त करो, बुद्धिमान पुरुषों ने उस आत्मज्ञान के मार्ग को वैसा ही दुर्गम बताया है, जैसे छुरे की तेज धार होती है, जिस पर चला नहीं जा सकता।⁴

जाबाल दर्शनोपनिषद् (1.9) में सत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है -- इन्द्रियों द्वारा जैसा देखा, सुना और सूँघा है, उसे वाणी द्वारा वैसा कह देना सत्य है।⁵

किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान सत्य कहलाता है। शरीर द्वारा इसका प्रयोग शरीर का सत्य है। वाणी द्वारा इसका प्रयोग वाणी का सत्य है, मन के द्वारा इसका प्रयोग मन का सत्य है।

वेदान्त में परब्रह्म को ही सत्य माना गया है, क्योंकि वह सर्वकाल में शाश्वत है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई सत्य नहीं है।⁶

यम के दूसरे अंग अहिंसा का अर्थ है - किसी प्रकार भी किसी को पीड़ा न पहुँचाना।

बाचस्पत्यम् में अहिंसा को परिभाषित करते हुए कहा गया है - वैदिक रीति के बिना मन, वाणी एवं शरीर के द्वारा किसी को कष्ट पहुँचाना ही हिंसा है, किन्तु किसी के कल्याण के लिए यदि उसे कष्ट पहुँचे तो वह अहिंसा ही कही जायेगी जैसे शिष्य को ताड़ना देना या रोग निवारण हेतु किसी को कटु औषधि देना, आपरेशन करना अहिंसा ही है। वस्तुतः देखा जाये तो समस्त यम-नियमों का मूल अहिंसा ही है, क्योंकि अहिंसा को परम धर्म कहा गया है -

अहिंसा परमो धर्मः।⁷

तीसरा यम अस्तेय है, जिसका सामान्य अर्थ चोरी न करना है, किन्तु यह मात्र स्थूल धन की चोरी न करने तक सीमित नहीं है। किसी के अधिकारों का हनन न करना तथा नैतिक मूल्यों की रक्षा करना भी अस्तेय ही है। **जाबाल दर्शनोपनिषद् में कहा गया है -** किसी दूसरे के तृण (तिनके), रत्न, मणि, मुक्ता, सुवर्ण, धन सम्पदा पर मन भी न चलना अस्तेय है। संसार के सभी व्यवहार अनात्म हैं, अर्थात् आत्मा से भिन्न हैं, ऐसा मानने वाले ज्ञानी जन अस्तेय का ही पालन करते हैं।⁸

ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए जाबाल दर्शनोपनिषद् में कहा गया है - मन, वचन एवं शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का त्याग और ऋतुकाल में मात्र अपनी ही पत्नी से संबंध रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है या फिर काम-क्रोधादि रिपुओं को कष्ट पहुँचाने वाले मन को परब्रह्म अविनाशी परमात्म तत्त्व के ध्यान में लगाये रखना सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है।⁹

इस उपनिषद् में अपरिग्रह का वर्णन नहीं किया गया है। बल्कि दया, आर्जव (सरलता), क्षमा, धृति, मिताहार, शौच को यम के अन्तर्गत ही वर्णन किया है। इसी प्रकार पातंजल योग सूत्र में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान नामक पाँच नियमों का वर्णन है, वही जाबाल दर्शनोपनिषद् में तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर की पूजा, लज्जा, जप, मति, व्रत एवं सिद्धान्त श्रवण करना नामक दस नियम बताये गये हैं।¹⁰

जाबाल दर्शनोपनिषद् के अनुसार - दैव इच्छा से जो कुछ भी प्राप्त हो जाये, उतने मात्र से ही हृदय में जो प्रसन्नता सदैव बनी रहती है, ज्ञानी जन उसी को संतोष मानते हैं अथवा सर्वत्र अनासक्त रहकर ब्रह्मा आदि देवताओं के लोक तक के सुखों से विरक्त होने के कारण मन में जो प्रसन्नता बनी रहती है, महान पुरुष उसी को श्रेष्ठ संतोष मानते हैं।¹¹

शौच को परिभाषित करते हुए जाबाल दर्शनोपनिषद् में कहा गया है - मिट्टी और जल से शरीर को पवित्र रखना बाह्य शौच है, किन्तु ज्ञानी जन में विशुद्ध आत्मा हूँ ऐसा भाव रखने को ही सर्वोत्कृष्ट शौच कहते हैं। शरीर तो बाहर-भीतर उभय विध अशुद्ध है, पर इसमें निवास करने वाला देही अत्यंत निर्मल है।

ऐसा ज्ञान होने पर उसे पवित्र किया जाये। अतः हे मुने! जो ज्ञान रूप पवित्रता को छोड़कर बाह्य पवित्रता में ही रमा रहता है, वह स्वर्ण के स्थान पर मिट्टी के ढेले का ही संग्रह करता है।¹²

तप को परिभाषित करते हुए जाबाल दर्शनोपनिषद् में कहा गया है - वेदोक्त कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करके शरीर को शोष करना ही तप है, ऐसा विद्वान कहते हैं।¹³

चौथा स्वाध्याय है - पातंजल योग के अनुसार ओंकार सहित गायत्री मंत्र का जप ही स्वाध्याय है।¹⁴ तैत्तिरीयोपनिषद् में वेद विद्या पढ़ा देने के पश्चात आचार्य शिष्य को उपदेश करते हुए कहता है - स्वाध्याय और प्रवचन द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ाते रहना। इसमें आचार्य अन्य प्रकार से भी शिष्य को ज्ञान देता है जैसे - तुम सत्य बोलना, धर्माचरण करना, स्वाध्याय से प्रमाद न करना।

स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।¹⁵

पाँचवाँ ईश्वर प्रणिधान है। जाबाल दर्शनोपनिषद् में ईश्वर प्रणिधान को ईश्वर पूजन कहा है -

रागाद्यपेतं हृदयं - एतदीश्वर पूजनम् (जाबाल दर्शनोपनिषद् 2.8)। अर्थात् असत्य भाषण आदि दोषों से रहित तथा हिंसा आदि क्रूरता से मुक्त कर्म ही ईश्वर पूजन है।¹⁶

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों में नियमों का उल्लेख प्रमुखता के साथ मिलता है।

3. आसन - जाबाल दर्शनोपनिषद् में नौ प्रकार के आसनों का उल्लेख मिलता है। वे हैं - **स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त, मयूर और सुख** - ये नौ प्रकार के आसन हैं।

4. प्राणायाम - अमृतनादोपनिषद् में

प्राणायाम को समस्त इन्द्रियों के दोष उसी तरह दूर करने वाला बताया गया है, जिस प्रकार स्वर्ण को तपाने से उसके समस्त दोष दूर हो जाते हैं।¹⁷

इसी उपनिषद् में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है -

सव्याहृति सप्रणवां गायत्री शिरसा सह।

त्रि पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते।

अर्थात् ओंकार और व्याहृतियों सहित गायत्री मंत्र का तीन बार पाठ करते हुए पूरक, कुम्भक और रेचक प्रक्रिया को करने को एक प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम को इस उपनिषद् में ब्रह्म ही माना गया है, क्योंकि प्रणव (ओं या ओंकार) में तीन अक्षर अ, उ और म हैं तथा रेचक और पूरक में भी तीन-तीन वर्ण ही हैं। जाबाल दर्शनोपनिषद् में इसे प्रत्यक्ष उपासना माना गया है।¹⁸

5. प्रत्याहार - प्रत्याहार में चित्तवृत्तियों को उनके विषयों से हटाकर चित्त को हर स्थिति में शान्त रखा जाता है। अपने चिन्तन को अनात्म पदार्थों से हटाकर आत्मा में लगाये रखना प्रत्याहार है। योग तत्वोपनिषद् में कहा गया है - योगी कुम्भक में स्थित होकर (प्राणायाम द्वारा प्राण को भीतर धारण किये रहना) इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर लाये, यह प्रत्याहार कहा जाता है। उस समय नेत्रों से जो कुछ भी देखे, उसे आत्म भावना से ग्रहण करो।¹⁹

6. धारणा - चित्तवृत्तियों को चारों ओर से हटाकर किसी एक स्थान या विषय में लगाना धारणा है। मन के विचारों एवं संकल्पों को आत्मा में लय करते रहना और आत्मा या परमात्मा के चिन्तन में स्थित रहना धारणा कहलाता है।

अमृतनादोपनिषद् में कहा गया है - मन को संकल्पनात्मक मानकर उसे आत्मा में लय करते हुए उसे परमात्म चिन्तन में धारण करना, धारणा की स्थिति है।²⁰

इसी उपनिषद् में कहा गया है - प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोषों को तथा धारणा के द्वारा पापों को जलाते हैं।²¹

7. **ध्यान** - चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक विषय पर सतत स्थिर करना ध्यानPage 8हृदय में स्थिर वा एकाग्र करता रहता है। यही ध्यान जब निरावलम्ब को ग्रहण करता है, तब समाधि कहलाता है।मैत्रायणि उपनिषद् में कहा गया है — मन का विषयों से मुक्त होना ही ध्यान है —

ध्यानं निर्विषयं मनः (मैत्री. 2.3)²²

8. **समाधि** - चित्तवृत्तियों जब विकारों से रहित विशुद्ध अवस्था को प्राप्त होती हैं, समाधि योग तभी लगता है। ऐसी अवस्था में चित्त विक्षेपरहित हो जाता है और लक्ष्य विशेष में समाहित एवं स्थिर हो जाता है। ध्यान की पराकाष्ठा को भी समाधि कहते हैं।

निरालम्बोपनिषद् के अनुसार - जो अखंड ब्रह्म रूप का निश्चय करके निर्विकल्प समाधि में लीन रहकर परम स्वतंत्र और परम स्वरूप होता है, वह पुरुष सन्यासी वही मुक्त कहलाता है।²³

अष्टांग योग के अलावा भी योग के अन्य भूमिकाओं का भी वर्णन उपनिषदों में मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में योगाभ्यास के उपयुक्त स्थान का वर्णन करते हुए कहा गया है— परमेश्वर परमात्मा में मन लगाने वाला साधक ऐसे स्थान पर आसन लगाए जहाँ घास की भूमि समतल हो, ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ न हो। जो सब प्रकार से शुद्ध हो, जहाँ पर कूड़ा-कर्कट आदि न हो, इधर-उधर साफ किया हुआ हो, वहाँ काँटेदार वन न हो। अथवा श्वेताश्वतर उपनिषद के मत प्राप्त होते हैं कि मन के अनुकूल हो तथा जहाँ का वातावरण मन को पीड़ा पहुँचाने वाला अप्रिय न हो। ऐसे गुफा आदि वायुशून्य एकांत स्थान में पहले बैठिये हुए प्रकार से आसन लगाकर अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करना चाहिए।²⁴

श्वेताश्वतर उपनिषद में योग सिद्धि के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है कि परमात्मा प्राप्ति हेतु ध्यान योग का साधन किया जाता है। तब उसको अपने सामने कहीं कुँहरे के समान रूप से दिखता है। और भी कई प्रकार के चन्द्रमा की भाँति शीतल प्रकाश चरित्र फैला हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार के योग में ब्रह्म-दर्शन से पहले-पहल के रूप ब्रह्म को अभिव्यक्त करने के लिये होते हैं।²⁵ इसके अन्य श्लोक में कहा गया है कि योगी के शरीर में कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है। शरीर से सुगंध निकलता है तथा मल-मूत्र अल्प हो जाता है।²⁶

निष्कर्ष :- इस प्रकार से हम देखते हैं कि उपनिषदों में योग के तत्वों यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि का वर्णन प्रमुखता के साथ प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कठोपनिषद् 2.3.11
2. भगवद् गीता - 2.50
3. 8-13। डॉ. हरि वियोगी हरि : हमारी परंपरा
4. पृ - 200 - वही।
5. जो. दर्शनो. 1.9.
6. सर्व सत्यं परं ब्रह्म -- (जो. दर्शनो. - 1.10)
7. 8 - 32। पं. श्री राम शर्मा आचार्य : 108 उपनिषद् ब्रह्म विद्या खण्ड
8. अन्य दीये हुये रखने का यत्ने मौनिके वृत्ति डरिप च ... मुने (जो. दर्शनो. - 1.10-12)
9. जा. दर्शनो (2.13-15)
10. जा. दर्शनो (2.1-2)
11. बृ. भा. दर्शनो (2.5-6)
12. स्वदेहगलनिम्नसो --- रमते नरः (जो. दर्शनो. 1.20-22)

13. जो. दर्शनो - 2.3.

14. पृ - 372. पं. श्री राम शर्मा आचार्य (108 उपनिषद्, ब्रह्म विद्या खण्ड)

15. पृ - 203. डॉ. वियोगी हरि : हमारी परंपरापृ - 372. पं. श्री राम शर्मा आचार्य (108 उपनिषद्, ब्रह्म विद्या खण्ड)

16. अमृतनादोपनिषद् - 7

17. पृ - 379. पं. श्री राम शर्मा आचार्य (108)

18. योग. तत्त्व (62-69)

19. मनः संकल्पकं --- परिकीर्तितं (अमृ. 16)

20. अमृतनादोपनिषद् (8)

21. पृ - 454. पं. श्री राम शर्मा आचार्य : 108 उपनिषद् (ज्ञान खण्ड) ब्रह्मार्पणमस्तीति निश्चिन्त्य निर्विकल्प समाधिना स्ववरो प्रतिष्ठरति स संन्यासी स मुक्तः (निरा. 35)

22. पृ - 320. वेदद्वार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. 2062. 11 वाँ पुनर्मुद्रण) उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर.

23. पृ - 381 तथैव

24. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 2.13

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.